# ललित कलायें : कलाओं का सामंजस्य

**डॉ0 अर्चना रानी**
विभागाध्यक्षा एवं ऐसोसिऐट प्रोफेसर :
ड्राइंग एवं पेण्टिंग विभाग,
रघुनाथ गर्ल्स (पीजी) कॉलिज, मेरठ

सारां ा–

कला मानव संस्कृति की उपज है। वह हमारी विभिन्न परम्पराओं, संस्कृतियों की परिचायक हैं। हमारे विभिन्न उत्सवों, धार्मिक पर्वों, त्यौहारों पर ललित कलाओं की उपस्थिति देखी जा सकती हैं चाहे वह अल्पना, भित्ती चित्र के रुप में हों, कथा, काव्य के वाचन में हो या नृत्य, गायन के रुप में। सभी कलायें एक दूसरे से अलग होते हुए भी आपस में सामंजस्यपूर्ण हैं। भौली माध्यम, ि ाल्प, अभिव्यक्ति, कौ ाल एवं भाव भंगिमां की दृश्टि से भिन्न दिखाई पड़े, किन्तु प्रतीक, विशय, अभिप्राय, बिम्ब की दृश्टि से सभी कलाओं की सामंजस्यता अद्भुत है। अतः भिन्न–भिन्न माध्यम होने के बावजूद भी उनका अन्तः सम्बन्ध नकारा नहीं जा सकता।

भाब्द–संकेत– ललित कला, चित्रकला, काव्य, संगीत, स्थापत्य, सामंजस्य, संस्कृति, मूर्ति।

प्रस्तावना–

समस्त कलाओं का आपस में घनिश्ठ सम्बन्ध है जो प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। चित्र, काव्य एवं संगीत की आराध्य देवी सरस्वती को एक साथ ही वीणाधारिणी, पुस्तकधारिणी एवं कमलपुश्प विराजनी के रुप में माना जाता है। भारतीय संस्कृति के अनेक कवि एवं चित्रकार, संगीत के ज्ञाता भी रहे हैं और उनकी यह मान्यता है कि महान संगीतज्ञ नटराज के लय–ताल युक्त ताण्डव से ही काव्य, कला एवं संगीत का जन्म हुआ।

इस प्रकार मनुश्य की भावाभिव्यक्ति के अनेक माध्यम हैं। कोई अपने विचार लिखकर प्रकट करता है, तो कोई बोलकर, अभिनय आदि के माध्यम से। तो अन्य चित्र के माध्यम से अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

अगर कलाओं का मोटे रुप में वर्गीकरण किया जाये तो कलाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है– ललित कला एवं उपयोगी कला। ललित कला के अन्तर्गत चित्रकला, मूर्तिकला वास्तुकला, संगीत एवं साहित्य–ये पाँच कलायें आती हैं। जिसमें प्रथम तीन–चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला दृ य कलायें हैं, संगीत कला दृ य एवं श्रृव्य दोनों है क्योंकि इसमें देखने, सुनने दोनों की अवस्था रहती है तथा काव्य कला श्रृव्य कला है।

ललित कलायें मानव के सौन्दर्य–बोध की विकसित अवस्थाओं की परिचायक हैं। ललित कलाओं का मुख्य प्रयोजन आनन्द की सृश्टि करना है। उपयोगी कलाओं का सम्बन्ध हमारी उपयोगिता से होता है।; यद्यपि व्यवहारिक जीवन में इन कलाओं का कोई प्रयोजन नहीं, फिर भी मानव के आत्म–विकास में ये नितान्त आव यक हैं। सभ्यता एवं संस्कृति का तो मानों ये स्तम्भ हैं। वैसे भी किसी भी दे ा की संस्कृति की पहचान, उनका प्रतीक, उनका गौरव ललित कलायें ही होती हैं।

भाोध–पत्र का उद्दे य एवं महत्व–

ललित कला के अन्तर्गत चित्रकला, मूर्तिकला : स्थापत्य कला, साहित्य एवं संगीत कलायें आती हैं। ये सभी कलायें कलात्मक अभिव्यक्ति की दृश्टि से भारत के जन–जीवन में प्राचीन काल से लेकर आज तक चलती आ रही हैं। सभी कलायें अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से भिन्न–भिन्न होते हुए भी एक–दूसरे में समायी हुई हैं। अतः इस भाोध पत्र लेखन का उद्दे य सभी–कलाओं के अन्तः सम्बन्ध को उजागर करना है। उपरोक्त पाँचों कलाओं का सम्बन्ध हमारी संस्कृति, धर्म, के साथ–साथ भाौक से भी जुड़ा हुआ है अतः निश्प्रयोजन होते हुए भी यह हमारी दिनचर्या का, मानसिक सन्तोश का महत्वपूर्ण साधन हैं अतः इनका महत्व मानव प्राणी के लिये अक्षुण्ण है।

भाोध–पत्र की प्रक्रिया–

प्रस्तुत भाोध–पत्र में ललित कला के अन्तर्गत आने वाली पाँचों दृ य एवं श्रृव्य कलाओं के महत्व को बताते हुए उनके अन्तः सामंजस्य पर प्रका ा डाला गया है कि किस प्रकार चित्रकला संगीत से सामंजस्य रखती हैं, संगीत कला स्थापत्य कला से सामंजस्य रखती है, मूर्ति कला का काव्य–संगीत से क्या अर्न्तसम्बन्ध है। काव्यकला का चित्रकला एवं संगीत से क्या सामंजस्य है, पर पूर्ण प्रका ा डाला गया है।

विभिन्न ललित कलाओं का सामंजस्य–

भारत दे ा तो विविध कलाओं एवं कलाकारों से भरा पड़ा है। राजस्थान, महाराश्ट्र, मध्य प्रदे ा, उत्तराखण्ड की विभिन्न प्रकार की

कलायें–चित्रकला, मूर्तिकला, उत्कृश्ट वास्तुकला, संगीत कला, नृत्य, नौटंकी, हस्त ि ाल्प के नमूने किसका मन नहीं मोहते। भारत में आप जहाँ चले जायें, वहीं विभिन्न क्षेत्रीय कलाओं–चाहे वह चित्रकला हो, संगीत, काव्य, नृत्य या भवन निर्माण, सभी में कितनी, विविधता, नवीनता, मौलिकता, निजस्वता अद्भुतता है कि आ चर्य होता है। धन्य हैं हम कि हमनें ऐसी विविध संस्कृति से सुसम्पन्न, भारत भूमि में जन्म लिया।

देखा जाये तो कला मानव की चिरसंगनी अर्थात् उसकी जीवन संगिनी है। मानव ने कला को प्रतिश्ठित किया और कला ने मानव को आत्मचेतना एवं आत्मगौरव प्रदान किया है। कला ही मानव को सौन्दर्य एवं माधुर्य से पूर्ण करती हैं। वास्तविकता तो यह है कि मानव समाज का प्राणी है और कला समाज की रीढ़ की हड्डी है जिनपर हमारा अस्तित्व टिका हुआ हैं। महर्शि वात्स्यायन ने चौंसठ कलाओं और पाँच सौ अट्ठारह अन्तः कलाओं की व्यवस्थित सूची अपने ग्रन्थ 'कामसूत्र' में दी है। वात्स्यायन की इन्हीं कलाओं को भारत में चौंसठ कलाओं की मान्यता दी गई है। लेकिन इन कलाओं का अस्वादन सहृदय द र्शक या श्रोता ही ले सकता है। अर्थात् देखने या सुनने वाले व्यक्ति में भाव तत्व होना अनिवार्य है। लेकिन यह भी सत्य है कि भाव सभी में होते हैं। सभी में कोई न कोई कला छुपी होती है या उसे एक वि ि ाश्ट कला से प्रेम होता है। भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ 'नीति ातकम्' में लिखा भी है कि जिस व्यक्ति में साहित्य, संगीत या कला का अभाव है, वह बिना पुच्छ वाले प ु के सदृ ा है– 'साहित्य संगीत कला विहीन, साक्षात् प ु पुच्छ विशाण : हीनः।'

वस्तुतः कला अपने सुन्दर रुपों में मानव–जीवन के रोम–रोम में बसी हुई है। कहीं वह चित्रकला के रुप में सृजित होती है, तो कहीं साहित्यकार के हृदय को भाव विभोर कर कविता की धारा बहा देती है। कहीं हवा के मन्द–मन्द झोंको की आवाज की तरह संगीत के रुप में सुनाई देती है।

अपनी संरचना में सारी कलाएँ एक–दूसरे से सम्बद्ध ही नहीं होतीं, वरन् वे एक दूसरे की उपस्थिति का बोध भी कराती हैं। संगीत, चित्र, नृत्य और काव्य का परस्पर सम्बन्ध कई स्तरों पर प्रगट होता रहा है। इस सम्बद्धता में ललित कला और कविता का सम्बन्ध चिर–प्रसिद्ध है। पा चात्य और भारतीय सौन्दर्य ाास्त्र में वही कविता उत्कृश्ट मानी जाती रही है जिसमें चित्रमयता रही है और चित्र भी वही उत्कृश्ट माना गया है जिसमें कविता जैसी सूक्ष्म अर्थ छवियों को खोलने की भाक्ति हो। कविता और चित्रकला के आपसी सम्बन्ध पर संसार भर से बहुत–से उदाहरण जुटाए जा सकते हैं जो एक–दूसरे की पूरक बनकर अपनी सिद्धि करती रही हैं। इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो एक ही व्यक्ति में कवि और चित्रकार के गुण दिखाते हैं। का मीर के प्रसिद्ध चित्रकार मोलाराम उच्च कोटि के कवि थे और अपनी कविताओं के आधार पर चित्रांकन भी करते थे। कि ानगढ़ के राजा सावन्त सिंह (नगरीदास) कवि थे और चित्रकारी में रूचि रखते थे। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वर्गीय महादेवी वर्मा और श्री रामगोपाल विजयवर्गीय आदि की रचनाधर्मिता में कला और काव्य की यह गंगा–यमुना समरसता के साथ प्रवाहित हुई है। हिन्दी के महान साहित्यकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कविताओं में भी इसी गुण के द र्न होते हैं।

एक चित्रकार की वि ोशता यह है कि वह समतल धरातल पर ऊँचाईयाँ, गहराईयाँ, दूरी और नैकट्य आदि दिखलाता है। उसमें मानस–चित्रों को रेखा और रंगों के माध्यम से चाक्षुश चित्रों में प्रस्तुत करने की सामर्थ्य होती है। मूर्ति और स्थापत्य की भाँति चित्रकला भी चाक्षुश होने के कारण आँखों को तृप्ति प्रदान करती है किन्तु माध्यम की कोमलता के कारण चित्र में मूर्तता कम और मानसिकता अधिक होती है।

काव्य की अभिव्यक्ति में ' ाब्द' माध्यम होता है। भाब्द में स्थान, दिक, काल सबके परे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य होती है। इस अभिव्यक्ति में दो तत्व काम करते हैं– एक नादतत्व और दूसरा चित्रतत्व। चित्रतत्व तो काव्य का प्राण है। इस दृश्टि से प्रत्येक कविता अपने आप में भाव एवं विचारों की प्रतिमूर्ति है। भाब्द में चित्र निर्माण की भाक्ति होती है, क्योंकि भाब्द स्वयं एक चित्र है। इस भाक्ति के कारण उच्चरित भाब्द श्रोता के मन में मानस चित्र उभारता है।

जब हम 'अज्ञेय' के काव्य का मनन करते हैं तब उनके काव्य के पठन या श्रवण से भाब्द रंगों में डुबकी लगाकर संमूर्तता धारण कर मन में गुंजार उत्पन्न करते हैं तथा उनकी गुंजार बहुत ही सजीव, सतरंगी तथा चित्रोपम होती है साथ ही उनका काव्य भी बहुत प्रभावी होता है। यह कवि निराकार एवं गहनतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये चित्रभाशा का प्रयोग करता है उदाहरण– स्वरूप निम्न कविता, 'नाच' के पाठन–श्रवण के साथ–साथ पाठक या श्रोता के मन में चित्र बनता चला जाता है–

एक तनी हुई रस्सी है जिस पर मैं नाचता हूँ।
जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ
यह दो खम्भों के बीच है।
रस्सी पर मैं जो नाचता हूँ
वह एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक का नाच है।
दो खम्भों के बीच जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ।
उस पर तीखी रो ानी पड़ती है
जिसमें लोग मेरा नाच देखते हैं।
न मुझे देखते हैं जो नाचता है
न रस्सी को जिसपर मैं नाचता हूँ
न खम्भों को जिस पर रस्सी तनी है
न रो ानी को ही जिसमें नाच दीखता हैः
लोग सिर्फ नाच देखते हैं।
पर मैं जो नाचता हूँ
जो जिस रस्सी पर नाचता हूँ
जो जिस खम्भों के बीच है
जिस पर जो रो ानी पड़ती है

उस रो ानी में उन खम्भों के बीच उस रस्सी पर
असल में मैं नाचता नहीं हूँ।
मैं केवल उस खम्भे से इस खम्भे तक दौड़ता हूँ
कि इस या उस खम्भे से रस्सी खोल दूँ
कि तनाव चुके और ढील में मुझे छुट्टी हो जाए–
पर तनाव ढीलता नहीं
और मैं इस खम्भे से उस खम्भे तक दौड़ता हूँ
पर तनाव वैसा बना ही रहता है
सब कुछ वैसा ही बना रहता है
और वही मेरा नाच है जिसे सब देखते हैं
मुझे नहीं
रस्सी को नहीं
खम्भें नहीं
रो ानी नहीं
तनाव भी नहीं
देखते हैं–नाच!

वस्तुतः रूप, रस, गन्ध, स्प ा आदि की अनुभूति काव्य को अत्यधिक उदात्त बना देती है। उपमान, प्रतीक, बिम्ब कवि के ऐसे हथियार हैं जिनसें वह कविता का रूप खड़ा कर देता है। इस कवि का प्रमुख कवि कर्म कविता को चित्रोपम एवं संवेदन ाील बनाना है। काव्य और चित्रकला के अन्तर्सम्बन्धों पर उनकी सृजन प्रक्रिया का अध्ययन वि ोश प्रका ा डाल सकता है। मानस चित्र कवि और चित्रकार के मन में एक ही स्थिति में उभरते हैं। यह आन्तरिक अखण्ड अभिव्यक्ति पृथक माध्यमों से व्यक्त होकर काव्य तथा चित्रकला का रूप धारण करती है। सृजन–प्रक्रिया के समय कलाएँ एक दूसरी को प्रभावित ही नहीं करतीं, वरन योगदान भी देती हैं। कवि अपने सृजन क्षणों में काव्य के प्राण 'चित्र–तत्व' को साथ लेकर चलता है क्योंकि प्रतिभा सर्वप्रथम बिम्ब के माध्यम से बोलती है। चित्रकार के मन में जो मानस चित्र उभरते हैं उसमें पारम्परिक काव्य रूप, अनुभव और संस्कारों का पूर्ण योग रहता है।

निम्न कविता मेरे द्वारा लिखित है जिसके पाठन, श्रवण से पाठक या श्रोता के मस्तिश्क में प्रतिमायें बनने लगती हैं–

<u>अपलक निहार रही थी</u>
मैं अपलक निहार रही थी
उस चन्द्रमा को
बदनाम तो था वह
लेकिन बिना किसी डर के
चमचमा रहा था
अनगिनत सितारों में।
लेकिन आये हुए मन के भाव
कैनवास पर कब उतर गये थे
अहसास नहीं था मुझे
मैं तो पाशाण की भाँति
कठोर थी
कैसे उतर गये थे (रंगों में)
मेरे मन के भाव
वह कलाकृति भाायद किसी को
पसन्द नहीं आयी थी,
क्योंकि
बोलते होठ होने पर भी
मैं व्यथा नहीं कर सकी थी
अपनों से भी।
मेरी (तैयार की गयी) कृति
गूंगी बहरी होते हुए भी
मेरी भावना को जो स्पन्दित
कर रही थी
और मैं मौन
अपलक निहार रही थी
तन्हा चन्द्रमा को।

मेरा कला–संस्कृति से बचपन से ही लगाव रहा। परिवार के भरण–पोशण हेतु कला ि ाक्षिका बनी। अगर मैं धन सम्पन्न होती, तो भाायद मुझे नौकरी करने की आव यकता ही नहीं होती, तब मैं बस कला की ही सेवा करती। जीवन और लोगों ने जब–तब निरा ा किया, लेकिन कलाओं ने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा, वह मेरी जिजीविशा का स्थापत्य रही हैं। कलाओं से मेरा निजी सम्बन्ध अनेक स्तरों पर रहा हैं। विभिन्न वर्क ााप के माध्यम से, सेमिनार, संगोश्ठियों के माध्यम से, विभिन्न सांस्कृतिक स्थानों के सर्वे करने से, विशय–वि ोशज्ञों अर्थात् अपनी–अपनी कला में निपुण विभिन्न कलाकारों से मिलकर वाद–संवाद द्वारा, इन्टरव्यू, के द्वारा तथा विभिन्न क्षेत्रों के भ्रमण द्वारा। ि ाक्षिका होने के नाते पुस्तकों को मेरी सहचरी हैं जो मेरी ि ाक्षिका, साथी सभी हैं, उनसे तो मैंने बहुत ज्ञानार्जन किया। और मैंने यही पाया कि हमारी विभिन्न कलायें वे दीपि ाखाये हैं जो मोमबत्ती का मोम समाप्त हो जाने पर भी अंधेरे कमरे में निश्कम्प जलती रहती हैं। अगर कलायें न होती तो मेरा जीवन अकारथ ही चला जाता।

'भारतीय कलाओं' के अन्तर्गत प्राचीन समय से ही 'काव्य' को आधार बनाकर चित्र रचना होती रही है। 'संगीत' में भी 'काव्य' अधिक प्रभावी रहा है। 'संगीत' को मूर्तता प्रदान करने के लिए 'राग–रागनियों' का चित्रण होता रहा हैं। नृत्य और संगीत की भारतीय मन्दिरों और मूर्तिकला में भाुरु से ही अहम् भूमिका रही हैं। भारत में काव्य ने कला का रुप समृद्ध किया है और कला ने काव्य की व्याख्या की है। 'भारतीय काव्य' में 'सूर' 'मीरा' और 'जयदेव' जैसे भक्त कवियों के पद भी गाये जाते हैं। भारतीय कला में काव्य की ही प्रभाव ााली व्याख्या मिलती है। चित्रकला और संगीत के मार्मिक ज्ञान के बिना काव्य का अध्ययन अधूरा और काव्य की सूक्ष्म जानकारी के बिना कला की समीक्षा संकुचित रह जाती है। काव्य के पूर्ण सार में ही चित्रकला की व्याख्या निहीत है जो अभिव्यक्ति के द्वारा चित्रपटल पर अपनी छवि बिखेरती है।

इस प्रकार सम्पूर्ण कलाओं में एक मूलभूत अन्तर्सम्बन्ध रहता

है। सभी एक–दूसरे से कहीं न कहीं सम्बन्ध रखते हैं और स्पश्ट रुप से कहें तो इनका क्षेत्र ललित कला का क्षेत्र है। ललित कलाओं में सभी कलाओं का मिश्रण है या यूँ कहें कि अनेक कलाओं का एक जोड़ है– ललित कला, सिर्फ एक कला से कलाओं की पूर्ति नहीं होती। कलाओं का सामंजस्य ही ललित कला है।

ललित कलाओं से मनुश्य के उद्दे यों की पूर्ति तो होती ही है साथ–साथ यह आनन्द दायक भी है, हमारा दे ा भारत उत्सवधर्मी है। विविधता हमारी पहचान है। विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न त्यौहारों के साथ–साथ विविध कलाएँ भी हमारी अनूठी पहचान हैं। आपने देखा होगा कि भारत के अलग–अलग राज्यों की अपनी–अपनी वि िाश्ट कलाएँ हैं। आपने यह भी देखा होगा कि हमारी कलाओं को त्यौहारों, उत्सवों से अलग नहीं किया जा सकता। ये कलाएँ जन्मोत्सव से लेकर, भाादी–ब्याह, पूजा तथा खेती–बाड़ी से भी जुड़ी हैं। मनुश्य के जीवन से जुड़ी होने के कारण ही भारत की ये वि िाश्ट कलाएँ विरासत के प्रति हमें उत्साह और वि वास से भर देती हैं। क्या आपको यह नहीं लगता कि पूर्वों–त्यौहारों या फिर फसलों से कलाओं का जुड़ाव ही एक ओर इसे केवल मनोरंजन या अलंकरण होने से बचाता है, तो दूसरी ओर यही पहलू, प्राचीन परंपराओं की सतत् निरंतरता को बनाए रखता है। वास्तव में यही अतीत और वर्तमान के बीच जुड़ाव की कड़ी भी है।

अगर हम आज पीछे मुड़कर देखें तो पाएँगे कि जनजातीय और लोककला भौलियों के सभी रुपों में एक व्यवस्था भी दिखाई पड़ती है, जो आगे चलकर भाास्त्रीय कलाओं का आधार बनीं। एक बात ध्यान देने की है कि भाुरुआती दौर में सभी कलाओं का सम्बन्ध लोक या समूह से ही था। बाद में चलकर जब इनका सम्बन्ध व्यवसाय से जुड़ा तो व्यक्ति केन्द्रित होती चली गईं। मध्यकाल तक आते–आते साहित्य, चित्र, संगीत, नृत्य कलाएँ राजाओं और विभिन्न भाासकों के संरक्षण में चली गई और धीरे–धीरे भाास्त्रीय नियमों में बँधीं। वे कलाकारों को अपनी अभिरुचियों के अनुरुप कलाओं को सुव्यवस्थित और परिश्कृत करने के लिए प्रोत्साहित भी करते रहते थे।

इस तरह मन्दिरों और महलों के विकसित होती हुई ये कलाएँ भाास्त्रीय स्वरुप ग्रहण करती गईं। गुप्त साम्राज्य में तो पराकाश्ठा पर पहुँच गईं। भरत मुनि के नाट्य ाास्त्र में इनका भाास्त्रीय स्वरुप बना, जो कला के लिए अब तक का प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण भाास्त्र है। नाट्य ाास्त्र ने संगीत, नृत्य–अभिनय कलाओं को एक भाास्त्रीय कला का स्वरुप दिया। फिर भी लोक कलाएँ अपनी जड़ों से पूरी तरह जुड़ी रहीं। आज की कलाओं की जड़ें लोक में ही हैं, चाहे चित्रकला हो, संगीतकला हो या फिर नृत्य कला। भाास्त्रीय और लोककलाओं के बीच कभी न खत्म होने वाला संवाद ही इनकी ताकत है। हमारी लोक कलायें वि व मनन की चेतना का स्पंदन है, हृदय के राग–विरागों की बाँसुरी हैं। यह वह दर्पण है जिसमें जीवन युग की छाप दिखाई देती है। हमारी कलायें जहाँ एक ओर मानवता की अतीत अनुभूतियों का अमरको ा हैं वहीं दूसरी ओर वर्तमान की सकल एवं भविश्य की प्रेरणा हैं।

उपसंहार–

समस्त कलाओं के सामंजस्य की बात करें तो विश्णुधर्मोत्तर पुराण के तीसरे खण्ड 'चित्रसूत्र' में वर्णित राजा वज्र और ऋशि मार्कण्डेय के बीच वार्तालाप भी विविध कलाओं में अन्तः सम्बन्ध होने का संकेत देते है। जिसमें राजा वज्र ऋशि मार्कण्डेय से देव प्रतिमा निर्माण की विधि ज्ञान प्राप्त करना चाहता है और उत्तर में मार्कण्डेय मूर्तिकला को जानने के लिये चित्रकला के नियम, चित्रकला को समझने के लिये नृत्यकला का ज्ञान और नृत्यकला को जानने हेतु वाद्य–संगीत के ज्ञान की आव यकता का वर्णन करते हैं। इस प्रकार समस्त कलाओं के अन्त सम्बन्ध का एक प्रबल प्रमाण है– कलाओं की परस्पर निर्भरता। किसी भी कला के विकास के लिये उस कला को अन्य कला–माध्यमा पर आश्रित रहना पड़ता है। परस्पर निर्भरता के कारण एक कला की वि ोशता दूसरी में आ जाती है और यह परम्परा चलती रहती है।

सन्दर्भ–संकेत


1. डॉ0 अन्नपूर्णा भाुक्ला– ललित कलाओं के अन्तर्सम्बन्ध और काव्य–कला का जगुलबंदी, इन्दौर : इन्टरने ानल जनरल ऑफ रिसर्च ग्रन्थालय, वाल्यूम–7, नवम्बर–2019.
2. डॉ0 उमा भार्मा– काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध, सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, 1880.
3. कुमार विमल– सौन्दर्य ाास्त्र के तत्व, नई दिल्लीः राजकमल प्रका ान, 1981.
4. कंचन कुमारी– भारतीय चित्रकला में ललित कला व लोक संस्कृति का समावे ा, इन्टरने ानल जनरल ऑफ रिसर्च ग्रन्थालय, इन्दौर, वॉल्यूम–5 (इ ू–12), दिसम्बर–2017.
5. मृदुला भाुक्ला– सूर काव्य में कविता संगीत और चित्रकला का अन्तः सम्बन्ध, दिल्ली : दुर्गा प्रका ान, 2013.
6. भगवत भारण उपाध्याय– भारतीय चित्रकला का इतिहास, नई दिल्ली : पुपिल्स पब्लि िंग हाऊस, 1981.
7. समकालीन कला– ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, नवम्बर–1986, अंक–7, 8.
8. डॉ0 मिनाक्षी– ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त, जयपुर, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2013.
9. डॉ0 भाोभा निगम– भारतीय द ान, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लि ार्स प्रा0 लि0, 2018.
10. डॉ0 उदय नारायण उपाध्याय, प्रो0 गौतम तिवारी– भारतीय स्थापत्य एवं कला, नई दिल्ली–मोतीलाल बनारसीदास, 2015.
11. जिनदास जैन– भारतीय चित्रकला का आलोचनात्मक अध्ययन, मेरठ : राजहंस प्रका ान मन्दिर, 1977.
12. डॉ0 अर्चना रानी, (सम्पादक)– भारतीय परम्परा में सौन्दर्य, मेरठ : प्राइम पब्लि िंग हाऊस, 2020.